जिंदगी यहाँ और वहाँ

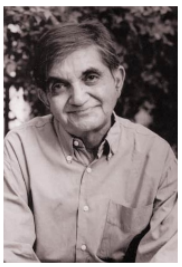

निर्मल वर्मा

हिन्दी ADDA

जिंदगी यहाँ और वहाँ

https://www.hindiadda.com/jindagi-yahan-aur-vahan/

और तब फोन की घंटी बजी और वह समझ गया, यह वह है - वह भागता हुआ मेज के पास आया, 'हलो,' उसने कहा, 'यह मैं हूँ।' दूसरी तरफ सन्नाटा रहा, 'हलो,' जैसे वह उसकी सहमी, ठिठुरती आवाज सुन रही हो। 'हलो, हलो,' उसने थूक निगल कर कहा, 'कौन है? आप कौन हैं?'

उसने फोन के ऊपर देखा। खाली दीवार, जनवरी का महीना, एक खिड़की, जिसका पर्दा उठ गया था। मैं दस तक गिनती गिनूँगा, उसने सोचा, इस बीच कुछ नहीं बोलूँगा, वह फोन बंद कर देगी और खतरा टल जाएगा। हुआ भी यही-दूसरी तरफ सन्नाटा हो गया - और वह गिनने लगा - पर दूसरे ही क्षण उसका स्वर सुनाई दिया, घबराया-सा, नर्वस, फोन के काले सन्नाटे को भेदता हुआ, 'फैटी, तुम सुन रहे हो? तुम बोलते क्यों नहीं? यह तुम क्या बुड़बुड़ा रहे हो... मैं सुन भी नहीं सकती।'

'मैं गिनती गिन रहा था।' उसने खिसियानी-सी आवाज में कहा। 'क्या कहा? गिनती?' वह धीरे से हँसी - एक छोटी-सी हताश हँसी - जो फोन के भीतर एक घबराई चिड़िया-सी घूम रही थी - 'सुनो, आज मैं तुम्हारे घर नहीं आ सकूँगी... मैं लायब्रेरी में रहूँगी।' उसने कहा, 'क्या तुम वहाँ आ सकोगे?' मन में आया, कह दे - इरा, आज नहीं, आज मुझे काम है। काम? वह उसकी आवाज को पकड़ लेगी, मरोड़ कर उसका झूठ निचोड़ देगी - घर में अकेले रहना कोई काम है? वह विश्वास नहीं करेगी - वह सोचेगी, मैं फिर उसे सता रहा हूँ, कितना विचित्र है, जब तुम उनसे कहो, कि तुम अकेले रहना चाहते हो - तो यह जानते हुए भी कि तुम अकेले घर में रहते हो - वे कभी तुम्हारा विश्वास नहीं करते। अगर तुम खाली हो - तो खाली कैसे रह सकते हो?

कोई फायदा नहीं। उसने फोन को दोनों हाथों से पकड़ लिया, जैसे यह उसका छोटा-सा सिर हो! कंधों पर गिरते बाल, माथे पर काली बिंदी, दो फफकती-सी आँखें, 'नहीं, नहीं, मुझे कोई काम नहीं, मैं आऊँगा... मुझे कनॉट प्लेस में एक काम भी है। उसे निपटा कर सीधा चला आऊँगा - क्या कहा? जरा ऊँचा बोलो, मैं कुछ भी नहीं सुन सकता...'

'मैं दिन-भर लायब्रेरी में रहूँगी' - उसकी आवाज सहसा बहुत धीमी पड़ गई, जैसे घूमती चिड़िया बहुत थक गई हो, निढाल-सी पसर गई हो, 'तुम किसी भी समय आ सकते हो। मुझे...' एक क्षण वह झिझकी, 'मुझे तुमसे कुछ काम है - मुझे...' पर यहाँ वह चुप हो गई। वह देख सकता था - उसके स्वर का पीला रंग, जो फोन के सन्नाटे पर छितरा आया था - डूबता हुआ, अपनी गूँज की तस्वीर दीवार पर खींचता हुआ...

क्या तुम अब भी वहाँ हो?

पता नहीं, वह क्या सोचती होगी? वह पूछती नहीं थी। वह देखती भी नहीं थी। वह बीच का रास्ता निकाल लेती थी - देखने और पूछने के बीच - जिसे वे 'जानना' कहते थे। किंतु कभी-कभी वह भूल जाती। वह सोचती, वह उसके साथ है। अचानक लाल बत्ती जल जाती - और वह ठिठक जाती। पीछे मुड़ कर देखती तो वह कहीं दिखाई न देता। बाद में जब वह उससे मिलती, तो पूछने का साहस भी न कर पाती कि वह वहाँ गया था।

वह दूसरे दिन फोन करती-और वह घर में होता। उसका घर में रहना - यह पक्की बात थी, एक ठोस चीज। इसमें कोई शक नहीं था कि वह फोन करेगी और वह घर में होगा। वह हमेशा कनॉट प्लेस के गलियारे में एक पब्लिक बूथ से फोन करती थी। वह डायल घुमाती थी - और घंटी बजने लगती थी। वह बूथ के शीशे के बाहर देखने लगती - अगस्त का भीगा प्रकाश, कनॉट प्लेस के पेड़, लॉन पर बैठे हुए लोग... वह सीढ़ियाँ उतर रहा होगा। इतना बड़ा, अकेला घर, खाली कमरे - फोन की घंटी जैसे किसी उजाड़ जर्जरित गिरजे के बीच प्रार्थना कर रही हो, पत्थरों को छू कर वापस लौट आती हो। बारिश के दिन में बूथ के शीशे पर बुँदकियाँ छिटक जातीं - धुँधले-से बादल छतों पर घूमते रहते - दिल्ली एक टिमटिमाता-सा दीया दिखाई देता - धुंध पर तिरता हुआ, 'हलो, हलो - यह मैं हूँ, और तुम...?'

मैं यहाँ हूँ।

यहाँ - अपने कमरे में...। यहाँ जून की शामें बुरी नहीं होतीं, आकाश से राख झरती है और सूरज एक उपेक्षित कोने में सुलगता रहता। वह लायब्रेरी के एक कोने में बैठी रहती और वह - अपने छतवाले कमरे में। अब कोई फोन नहीं आएगा... वह निश्चिंत हो कर बैठ जाता। कमरे में अँधेरा कर लेता। पंखे की हवा में समूची पीड़ा को पसीने के साथ बहा देता।

अब कोई नहीं आएगा। वह चली गई है। उसने उसे जाते देखा है। वह महीनों को उल्टा गिनने लगता है - और जनवरी पर आ कर रुक जाता है। हमेशा एक ही महीने पर-जैसे बैगाटेल की गोली चारों तरफ टकरा कर, बार-बार एक ही सूराख में घुस जाती हो। वे सर्दियों के दिन थे और वह बाहर अँधेरे में खड़ा था। उसके कमरे की बत्ती जल रही थी - वह ठिठुर रहा था - वह नींद नहीं है - वह एक दूसरा समय है - नींद की ही तरह छाँहदार, वह झाड़ियों के पीछे खड़ा है - उसके कमरे को देख रहा है - वही नीबू की झाड़ी और एक छोटा-सा लॉन-खाली और उजाड़। वहाँ अब कोई नहीं रहता।

विश्वास नहीं होता, मैं वही आदमी हूँ, जो चार महीने पहले था। उसके घर के बाहर अँधेरे में खड़ा था। फैटी, तुम, वही हो - सच! तुम वही हो और बिल्कुल नहीं बदले। मैं वही हूँ, जो पैंतीस साल पहले इस दुनिया में आया था। यदि वे जीवित होते, तो एकदम उसे पहचान जाते। यदि तुम बरसों बाद घर लौट कर आओ - तो वे एकदम पहचान लेते हैं - पर वे यह नहीं जानते, तुम कहाँ से लौट कर आए हो। वे कभी सोच भी नहीं सकते, कि इतनी यातना सह कर उन्होंने जिसे जन्म दिया है, वह बड़ा हो कर इतनी यातना बर्दाश्त कर सकता है - इसीलिए वे चले जाते हैं। अपने बच्चों से पहले ही उठ जाते हैं। खत्म हो जाते हैं... मर जाते हैं!

और बच्चे? उन्हें कोई जल्दी नहीं - एक खाली मकान और अंतहीन समय। मैं उनमें हूँ। मैं बचा रह गया हूँ। मुझे कोई जल्दी नहीं।

शुरू में ऐसा नहीं था। वह हमेशा जल्दी में रहता था। वह जब अकेला दिखाई देता, तो भी लगता जैसे कोई उसके साथ है, एक कुत्ते की तरह उसके पीछे घिसटता जा रहा है। वह कभी अचानक बीच सड़क पर खड़ा हो जाता, जैसे उसने किसी को देख लिया हो - पेड़ के नीचे कोई अद्भुत-सा कीड़ा, धूप में नहाती कोई तितली - या कोई ट्यून पियानो से बाहर आती हुई, जिसे सुन कर वह बँगले की दीवार से सट जाता। मुस्कराने लगता - और तब मुझे अजीब-सा भ्रम होता कि वह उन अकेले लोगों में है, जो अकेला होने पर भी सारी दुनिया साथ ले कर चलते हैं। मुझे कभी-कभी तीव्र-सी आकांक्षा होती है कि एक बार मैं दीवार पर चढ़ कर नीचे - वहाँ उसके अकेलेपन में - झाँक कर देख सकूँ... वह किससे बोलता है, कहाँ जाता है - क्यों अचानक मुस्कराने लगता है!

पर मैं लायब्रेरी में बैठी रहती - और उसे दूर से देखा करती। जब कभी मैं लिखते - लिखते थक जाती तो डेस्क पर अपना माथा टिका देती - अपनी थीसिस के बारे में भूल जाती - और उन दिनों के बारे में सोचने लगती - जब मैं शहर में घूमा करती थी। दिल्ली बड़ा शहर था। पर कुछ ऐसी जगहें थीं, जहाँ एक-दो चेहरे बार-बार दिखाई दे जाते थे। मैं घर से बाहर निकलती... जैसे कुछ लोग जुआ खेलने या रेसकोर्स में जाते हैं - क्या उन्हें सही पत्ता हाथ लग जाएगा? कौन-सा घोड़ा सबसे आगे भागेगा? मैं अपने से खेलने लगती... क्या वह इस कंसर्ट में आएगा? या इतवार के दिन नेशनल म्यूजियम के हॉल में मुझे भ्रम होता, वह भी कहीं पीछे खड़ा है, सातवीं शती की किसी मूर्ति को देख रहा है। वह अचानक दिखाई दे जाता - और तब मैं जीत जाती। मेरा दिल तेजी से धड़कने लगता, किसी थिएटर से बाहर आते हुए या म्युजिक कान्फ्रेंस में जो सर्दी की रातों में देर तक चलती रहती... मैं टैक्सी की तलाश में एक तरफ खड़ी रहती

और वह दूसरी तरफ बस-स्टैंड की तरफ जाता हुआ दिखाई दे जाता - जहाँ स्कूटर खड़े रहते।

दिल्ली अजीब शहर है - कुछ ऐसे स्थल हैं - जहाँ वे हमेशा दिखाई दे जाते हैं। एक चलती-फिरती दुनिया - जिसके सदस्य एक-दूसरे को नहीं जानते - फिर भी हमेशा एक-दूसरे से मिलते हैं, अँधेरे हॉल में एक साथ ताली बजाते हैं - पर एक-दूसरे को जानते नहीं, छूते नहीं - तमाशा खत्म होते ही अपने-अपने कोनों में खो जाते हैं।

फिर गर्मियाँ आईं और लोग बाहर जाने लगे - नैनीताल, मसूरी, शिमला - उन मौसमी परिंदो की तरह जो सीजन बदलने पर अपने घोंसलों को छोड़ कर उड़ जाते हैं। दिल्ली की सड़कों पर अब भी भीड़ दिखाई देती - किंतु वे लोग, जिन्हें हम जानते थे - अब कहीं दिखाई नहीं देते थे। थिएटर के हॉल बंद हो जाते - म्यूजियम के गलियारे उजाड़ दिखाई देते - जैसे बाहर का समय भी - भीतर की उनींदी कलाकृतियों की नींद में शामिल हो गया हो...

एक दिन विचित्र घटना हुई। मैं लायब्रेरी में बैठी थी... पिछली सीट पर - जहाँ रोशनदान की रोशनी सीधे डेस्क पर पड़ती थी। एक गौरैया रोशनदान के शीशे पर तिनके जमा कर रही थी - और उसकी छाया सीधे मेरे नोट्स पर गिर रही थी - मुझे यह डिटेल अच्छी तरह याद है - क्योंकि अचानक मुझे लगा कि किसी ने आ कर उस गौरैया को बीच में काट दिया हो और उसे अपनी ओट में छिपा लिया हो। मैंने सिर उठाया, तो वह दिखाई दिया। यह पहला मौका था, जब मैंने उसे पहली बार इतनी पास से देखा था।

वह निश्चल खड़ा रहा... जैसे वह गलत रास्ते पर है और वापस मुड़ना चाहता है... क्या मैं आपको डिस्टर्ब कर रहा हूँ? मैंने सिर हिलाया और जल्दी से कागज समेट लिए जैसे मैं उन्हें उसकी आँखों से बचा रही हूँ - पर उसकी आँखें मुझ पर थीं और उनमें एक दूर का दिलासा था - मैं मुस्कराने लगी। 'क्या कुछ काम है?' मैंने पूछा - उसने एक मुड़ा-तुड़ा कागज मेरे नोट्स की कापी पर रख दिया। मैं उसे देखते ही पहचान गई - कि वह कोई स्टेटमेंट है, कोई पिटीशन, कोई 'ओपन-लेटर' जैसी चीज - ईश्वर ही जानता है, ऐसी चीजें उन दिनों कितनी निकला करती थीं। मैं उसे ध्यान से पढ़ने लगी, पर मेरा ध्यान उसकी तरफ लगा था... वह अब भी खड़ा था। मुझे क्या करना होगा? मैंने उसकी ओर देखा। कुछ नहीं, उसने कहा, अगर आप इससे सहमत हैं, तो साइन कर दीजिए। इसका कोई फायदा होगा? मैंने कुछ चिढ़ाते हुए कहा - ताकि वह बाहर निकल सके, सामने आ सके। होगा क्यों नहीं... उसने कहा - फायदा नहीं, लेकिन अगर हम

उनका ध्यान अन्याय की तरफ खींच सके... कोई और कहता तो मैं हँसने लगती, लेकिन वह लायब्रेरी के आधे अँधेरे में चुप खड़ा था - बाहर जून की तपती, घुटती शाम थी। ऐसी घड़ी में न्याय-अन्याय की बात मुझे हिमालय की चोटी-सी जान पड़ी, ठंडी और सफेद और पवित्र-पहुँच के परे - कुछ शब्द अचानक भीड़ से अलग हो जाते हैं - खोए से, लावारिस-प्रेम और पाप, ईश्वर, झूठ और न्याय और मौत - ठहरे पानी में अलग-अलग साबुत, चमकते, सुडौल पत्थरों की तरह मैंने जल्दी से कागज उठाया और दूसरे नामों के नीचे अपना नाम लिखने लगी... और तब मुझे एक अद्‌भुत-सा विचार आया - अपना नाम लिखते हुए - कि मैं उससे फिर मिलूँगी - किसी और दिन क्योंकि मेरा नाम ठीक एक-दूसरे नाम के नीचे था, जिसे यातना कहते हैं।

पर यह दूर की बात थी और उस दिन मैंने उसे नहीं जाना था।

उन दिनों वे अक्सर मिलते थे। दिल्ली में जून का महीना एक अलौकिक-सी चमक ले कर आता था-धूल के मैले पर्दे पर सूरज एक मोमबत्ती-सा पिघलता रहता और कोई बादल एक पतंगे-सा उठ कर उसे अपने में ढक लेता। एक क्षण के लिए शहर पर अँधेरा घिर आता - और एक फटी-फटी सफेदी लायब्रेरी के भीतर झाँकने लगती। वे बड़े हॉल की बत्तियाँ जला देते और दरवाजे खोल देते। वह अपनी थकी आँखें ठंडे डेस्क पर मूँद लेती।

वह घर की सीढ़ियाँ उतरने लगता। बीच में बहुत-सी सड़कें आतीं और वह उनसे बच कर कनॉट प्लेस के गलियारे में चला जाता। ठंडे अँधेरे गलियारे में चलने लगता। बाहर धूप में औरतें मूलियाँ खातीं - पानी में तर और तीखी-और उनके परे गुलमुहर के पेड़ धूप में दहकते रहते।

दो गलियारों के बीच सड़कें आतीं - और उन्हें पार करते हुए वह उसका हाथ पकड़ लेती - तब तक पकड़े रहती - जब तक वे दोबारा अँधेरे कॉरीडॉर में नहीं चले जाते। पहली बार उन्होंने एक-दूसरे को इसी तरह छुआ था - डर में - रास्ते पर, सड़क पार करते हुए। यह ठीक नहीं था। यह एक तरह का अपशकुन था जो छाया की तरह आखिर तक मँडराता रहता है। बाद में, जब हम अकेले सड़क पार करते हैं, तो खाली हाथ हवा में डोलता है - पुरानी छुअन की याद में - उस अपाहिज की तरह, जिसे मौके-बेमौके अपने कटे अंग की याद आ जाती है - यह एक छोटी-सी मृत्यु है। लोग बहुत धीरे-धीरे मरते हैं।

मैं मरूँगा नहीं - फैटी ने सोचा। अभी नहीं। मेरे पिता सत्तर की उम्र में मरे थे - और माँ अभी कुछ वर्ष पहले तक जीवित थी। हमारे परिवार में लोग काफी लंबी उम्र तक

दुनिया को भोगते हैं। मरने के बाद भी वे जाते नहीं - वे यहाँ हैं, वे हस्तक्षेप नहीं करते, बोलते नहीं - किंतु जब मैं कोई चीज खो देता हूँ, दुख सहता हूँ - तो वे अचानक अँधेरे कोने से बाहर निकल आते हैं, अपनी झोली में मेरे खोने और दुख को सँभाल लेते हैं... वे मेरे जीने में नहीं, पर मरने में जरूर साझा करने को तैयार रहते हैं - जैसे मेरे कानों में फुसफुसा कर कहते हों - डरो नहीं। तुम बेशक हमें भुला दो, हम तुम्हें नहीं भुला सकते।

वह अँधेरे कॉरीडोर से बाहर निकल आया - और उसकी आँखें चकाचौंध हो गईं। एक क्षण के लिए उसे कुछ दिखाई नहीं दिया - फिर धीरे से किसी ने उसका हाथ पकड़ा और कहा - डू यू नीड चीप एयर-टिकट टु नेपाल?

नेपाल? उसने आँखें खोलीं और हँसने लगा। वह बहुत महीने पीछे मुड़ गया - जब वे साथ चल रहे थे। वे तुम्हें विदेशी समझते हैं - उसने कहा। मुझे देख कर नहीं - उसने कहा - जब तुम मेरे साथ नहीं होतीं, तो न मुझसे कोई डॉलर माँगता है, न कोई नेपाल का टिकट बेचता है। मुझे देख कर? वह हैरान हो जाती - शायद बहाना करती - या सचमुच हैरान हो जाती, अपने सिर का स्कार्फ उतार कर बालों को समेट लेती। वह काफी ऊँचे कद की लड़की थी, ऐनक के पीछे आँखें डरी हुई उत्सुकता में भरी रहतीं। कंधे पर थैला लटकता रहता और उसमें एक नीली फाइल लंबे, फुलस्केप कागज और लायब्रेरी की किताबें ठुँसी रहतीं। ईश्वर ही जानता है, उस थैले में क्या भरा रहता था!

'तुमने ले क्यों नहीं लिया?' उसने हँसी में आँखें ऊपर उठाईं, 'इतने सस्ते में नेपाल घूम सकते हो।'

'सुनो - हम अगली गर्मियों में जा सकते हैं...' उसने खुशी की रौ में कहा।

अगली गर्मियों में? उसके स्वर में हल्का-सा विस्मय था। वे थीसिस के आखिरी दिन थे... और वह न सर्दियों के बारे में सोचती थी, न गर्मियों के। लायब्रेरी से घर और घर से लायब्रेरी - यह कितनी छोटी दुनिया थी-और कितनी बड़ी! इनके बीच नेपाल एक स्वप्न-सा जान पड़ता था। पर उस क्षण - कनॉट प्लेस के अँधेरे कॉरीडोर में चलते हुए - उसे अजीब-सा सुख हुआ कि वह जा सकती है। इस दुनिया से बाहर निकल सकती है...

सुख? क्या कोई ऐसी चीज है, जिस पर उँगली रख कर कहा जा सके, यह सुख है, यह तृप्ति है? फैटी एक खंभे के सहारे खड़ा हो गया - बाहर कनॉट प्लेस का फव्वारा दीवाली के अनार की तरह लग रहा था - तितीरी धूप में सफेद फुहार ऊपर उठ रही थी,

नीचे गिर रही थी - नहीं, सुख होता नहीं, सिर्फ याद किया जा सकता है - अपनी यातना में - जब तुम्हें अचानक पता चलता है - यह जून है, वह जनवरी था। तुमने सोचा था, उसके चले जाने के बाद तुम इस शहर में नहीं रहोगे। पर तुम जीवित हो और साँस ले रहे हो... आदमी की खाल कितनी पक्की होती है! सब कुछ बर्दाश्त कर लेती है। पानी में डूब कर एक कुत्ते की तरह बाहर आ जाती है, जो एकबारगी अपनी देह झिंझोड़ कर सब कुछ झाड़ देता है... पानी का अँधेरा कितनी देर याद रह सकता है?

वह स्टेट्समैन की बिल्डिंग के सामने चला आया। वह खड़ा हो गया - लाल बत्ती को हरी बत्ती में बदलने की प्रतीक्षा में - ऊपर तोतों का झुंड उड़ा जा रहा था - कर्जन रोड के पेड़ों से उड़ कर मिंटो रोड के ब्रिज के ऊपर, हवा में एक लहर की तरह उठता हुआ।

एक बार ऊपर रेल जा रही थी और वे नीचे थे। वे नीचे बस में बैठे थे। ऊपर मिंटो रोड का पुल था। 'तुमने कुछ माँगा?' उसने उत्सुकता से मेरी ओर देखा - 'इस वक्त तुम जो कुछ माँगोगे, वह मिल जाएगा।' मैं हँसने लगा - मुझे नहीं मालूम था, वह इन चीजों में विश्वास करती है...। 'जल्दी माँगो, वरना रेल गुजर जाएगी।' एक क्षण के लिए हम दोनों चुप बैठे रहे और बस पुल के बाहर निकल आई। वह बारिश की शाम थी और एक अवसन्न-सा उजाला उसके चेहरे पर गिर रहा था। 'बोलो - तुमने क्या माँगा था?' उसने मुझे देखा - इतनी उदास आँखों से... मैंने मुँह मोड़ लिया और बस की खिड़की से बाहर देखने लगा। उस शाम - मिंटो रोड ब्रिज के नीचे - जब ऊपर रेल गुजर रही थी - उन दोनों ने एक ही इच्छा माँगी थी,एक-दूसरे से अलग होने की... वे जितना ज्यादा एक-दूसरे को चाहते थे, उतना ही एक-दूसरे से छुटकारा पाने के लिए तड़पते थे - जैसे चाहना कोई पाप हो, कोई बुरा स्वप्न, और तब हरी बत्ती हुई, और वह सड़क पार करने लगा -और कर्जन रोड के पीले, धूल में सने पेड़ों के नीचे चला आया। उनके नीचे चलते हुए उसे अचानक याद आया कि जीसस ने कहा था कि जिसके पास है, उसे और भी दिया जाएगा और जिसके पास कुछ नहीं है, उससे वह भी ले लिया जाएगा जो कुछ उसके पास है।

पता नहीं, इसका क्या मतलब था?

मैं अभी जाऊँगा और उससे यही पूछूँगा... और तब मेरे भीतर एक बहुत धुँधली तस्वीर खिंच आती है - वह लायब्रेरी के एक कोने में बैठी होगी, अपनी रिसर्च की कॉपियों में डूबी हुई। वह सोच रही होगी - अब मैं नहीं आऊँगा। वह दोबारा फोन करेगी - और घर में कोई नहीं होगा - घर के सूने कमरों में फोन की घंटी बेमतलब चीखती रहेगी - क्योंकि मैं यहाँ हूँ, कर्जन रोड के पेड़ों के नीचे। ऊपर तोतों का झुंड शाम की धूप में

मिंटो ब्रिज की तरफ जा रहा है, बाइबल का सिर्फ एक वाक्य दुहराता हुआ... जिसके पास है और... जिसके पास नहीं है।

वह एक खेल था। वे दोनों खेलते थे - खास कर उन दिनों - जब वह बहुत थक जाती। लायब्रेरी से सीधे आ कर उसके कमरे में लेट जाती थी। वह अपने कमरे के दरवाजे खोल देता - नीचे के कमरों में सन्नाटा रहता, और वे बंद रहते थे।

सिर्फ छत खुली रहती - जून का अँधेरा छोटे-छोटे टुकड़ों में आता था। हर टुकड़े पर ढेर-से तारे बिछे रहते - वे उन्हें दरवाजे पर सरकता हुआ देखते रहते।

वह एक खेल था - जादू और चमत्कार - जहाँ वे दोनों बिना एक शब्द भी बोले एक-दूसरे की इच्छा भाँप लेते थे। कुछ लोग इसे टेलिपैथी कहते हैं - जब दो अलग-अलग व्यक्ति एक ही घड़ी में एक ही बात सोच लेते हैं। वे जब उसके कमरे में आते थे, तो वह अँधेरे में आँखें मूँद कर लेट जाती थी - थकी और निढाल। वह हीटर पर पानी उबालने रख देता - और फिर उसके पास आ कर बैठ जाता। दोनों अँधेरे में एक-दूसरे की साँसें सुनने लगते।

'सुनो,' उसने सिर उठा कर कहा, 'मैंने कभी तुम्हारे फादर को नहीं देखा।'

'तुम्हें मालूम नहीं, वे मर गए।'

'मुझे मालूम है,' उसने कहा, 'पर तुमने कभी उनकी फोटो भी नहीं दिखाई?'

वह उठ बैठती - और खेल शुरू हो जाता। वह काफी विचित्र खेल था, क्योंकि कुछ देर के लिए हम एक-दूसरे को बिल्कुल भूल जाते थे... इस समय से छूट कर एक दूसरे समय में चले जाते थे, जहाँ मेरा घर धीरे-धीरे जागने लगता। बंद कमरों के दरवाजे खुल जाते, जैसे वह एक म्यूजियम हो, मैं गाइड हूँ - और वह चुपचाप आँखें फाड़ते हुए हर चीज को देखने लगती... मैं एक अलमारी खोलता, फिर दूसरी-पता नहीं, वह फोटो कहाँ थी, जो तीस साल पहले ली गई थी। उसे ढूँढ़ते हुए दूसरी चीजें बाहर आ जातीं। मैं उन्हें छिपाने की कोशिश करता और वह मेरा हाथ हटा देती - मुझे याद है, वह माँ की नथ बहुत ध्यान से देखा करती थी। मैं उससे नफरत करता था, क्योंकि उसने माँ की समूची नाक छील डाली थी... अलमारी के दूसरे कोने में मेरे पिता के नकली दाँत रखे थे। मैंने उन्हें सँभाल कर रखा था, उसी गिलास में, जिससें वे उन्हें उतार कर रखते थे। दाँतों के बीच अब भी डबलरोटी के कुछ टुकड़े फँसे थे, जो उन्होंने पिछली रात खाए थे...

'मरने से एक रात पहले?' उसने पूछा। वह मेरे पीछे खड़ी थी - उसका हाथ मेरे कंधे पर था, जैसे वह मुझे बचाने की कोशिश कर रही हो। पर मैं बचाव के बाहर था। मैं बरसों से उस घर में अकेला रहा था। मैं उसके कोने-कोने को जानता था।

मुझे किसी बचाव की जरूरत नहीं थी।

'यह पलंग देखती हो... यह बिस्तर।' उसने कहा, 'वे यहाँ लेटते थे। मैं ऊपर सोता था - वहाँ बरसाती में - जहाँ तुम आती हो।'

मैं उसके पीछे चलती गई। वह एक लंबा हॉल था। कोने में एक तिपाई रखी थी। पीछे कपड़ों की वॉर्डरोब। उसने खिड़की खोली - और तब अचानक रोशनी का सैलाब भीतर चला आया, जैसे बरसों से बाहर जमा हो, भीतर आने की प्रतीक्षा में। रोशनी बिस्तर पर आ रही थी - एक उठा हुआ तकिया, दो कंबल, बीच में एक गड्ढा - जैसे कोई वहाँ लेटा था - अभी-अभी बाहर गया था।

'यह उनका बिस्तर था?'

मैंने उसकी ओर देखा - और तब मेरा दिल जोर से धड़कने लगा। मुझे लगा, जैसे मैंने किसी प्रेत को देखा है - कोने में खड़ा हुआ - मुस्कराता हुआ। तब मुझे अचानक याद आया, वह सड़क पर चलता हुआ इसी तरह मुस्कराता था - अपने आप - अकेले में - जैसे उसने किसी अदृश्य चीज को देखा है - भीतर की दुनिया से बाहर आते हुए - वह ठिठक जाता था। वह खुद अपने से बोलने लगता था...

'फैटी,' मैंने उसका कंधा हिलाया। उसने मेरी ओर देखा, जैसे मैं कोई शीशे की दीवार हूँ - और वह मेरे भीतर गुजर कर मेरे पार देख रहा है, 'हाँ - वे यहीं मरे थे।' उसने कहा, 'मैं उनकी तिपाई पर दवा रख देता था। पेशाब की बोतल साफ कर देता था। मैं उनके सिरहाने की खिड़की खोल देता था। तुम जानती हो, दिल्ली में अगस्त की रातें कितनी साफ होती हैं - सोने से पहले वे आकाशगंगा देखते थे। उन्हें कभी नींद की गोलियों की जरूरत नहीं महसूस हुई। वे कहते थे - तारों के बीच सफेद लाइन पर चलते हुए मुझे नींद आ जाती है। मेरी तरफ हैरानी से मत देखो - वे सचमुच विचित्र आदमी थे। जब उन्हें पता चला कि मैं लिखता हूँ तो एक दिन उन्होंने मुझे अपना रजिस्टर दिखाया मरने से दो दिन पहले। प्लीज, टर्न टु पेज नाइनटी सेवेन... उन्होंने कहा। वे अपने बच्चों से हमेशा अंग्रेजी में बोलते थे। मैंने रजिस्टर खोला, तो सत्तानबे पृष्ठ पर सारा पन्ना खाली पड़ा था, सिर्फ ऊपर लिखा था - लाइफ हियर-ऐंड हियर आफ्टर! मैंने उनकी तरफ देखा - तो वे मुस्कराने लगे... यह टाइटिल है - उन्होंने कहा। जब बैठने

लायक हूँगा, तो सब कुछ लिख डालूँगा। मैं बहुत कुछ उन जैसा हूँ। मेरी बड़ी बहन मुझसे कहती थी कि मुझमें और बाबू के बीच एक बहुत पतला और महीन-सा धागा है, जो उनकी दुनिया को मुझसे अलग कर देता है - जिस दिन मैं वह धागा तोड़ दूँगा, मैं वहीं हूँगा, जहाँ वह हैं... बिल्कुल निर्दोष और पवित्र जगह में... बिट्टी, इधर देखो, यह फोटो है, अब तुम उन्हें देख सकती हो...

'इधर नहीं... उधर, खिड़की के पास आ जाओ। रोशनी में देखो... मेरी उम्र कोई सात बरस की होगी। तुम हँसोगी - पर सच बात यह है, मैं दिन-भर रोता रहा। मैंने सोचा, मेरी अंतिम घड़ी आ पहुँची है। मेरा यह अंधविश्वास था कि फोटो खिंचवाते ही मेरे भीतर का फुरना (यह माँ का शब्द था, जिसका मतलब शायद 'आत्मा' से रहा होगा। जब कभी मैं गुस्से में आ कर खाना नहीं खाता था, तो वे मुझे डराती थीं कि जब मैं सो जाऊँगा, मेरा फुरना मेरी देह से निकल कर रसोई में चला जाएगा - रात-भर भूखा-प्यासा मँडराता रहेगा) - हाँ, तो मेरा फुरना मुझे छोड़ कर फोटो पर चिपक जाएगा - जैसे कोई तितली अलबम के कागज पर चिपक जाती है, मर जाती है। मुझे डर था कि फोटो में आते ही मैं इस दुनिया से चला जाऊँगा, क्योंकि आदमी एक ही समय में दो जगह मौजूद नहीं रह सकता... यही कारण है कि मैं इस तरह आतंकित, बदहवास, गमगीन निगाहों से दुनिया को देख रहा हूँ। मेरी माँ कुर्सी पर बैठी है, बाबू पीछे खड़े हैं। मैं आगे हूँ, न पीछे - दोनों से अलग अपना हाथ कुर्सी के हत्थे पर टिका कर अपनी घातक नियति की तरफ घूर रहा हूँ। मोटे बच्चे यों भी काफी ट्रैजिक दिखाई देते हैं - उन्हीं दिनों का नाम आज भी चला आता है, तुम्हें याद है, जब मैं लायब्रेरी में पिटीशन ले कर आया था, तब... तुमने सोचा था जैसे मैं कोई...'

वह नहीं सुन रही थी। वह खोई आँखों से इन तीन अद्भुत प्राणियों को देख रही थी जो तीस साल पहले की फोटो में साँस ले रहे थे - उसकी तरफ घूर रहे थे, जैसे पूछ रहे हों, कौन है यह अजनबी लड़की, जो उनके घर में चली आई है, खिड़की की रोशनी में उनके अँधेरे को टोह रही है - लाइफ हियर ऐंड हियर आफ्टर! कौन-सी जिंदगी यहाँ वाली या वहाँ - जहाँ वे हैं - जब मैं बत्ती जलाने के लिए उठने लगा, तो उसने मेरा हाथ पकड़ कर बिठा दिया... उसे कमरे में धीरे-धीरे अँधेरा आना अच्छा लगता था - जून की पीली तलछट, जो बिस्तर पर बिखर जाती और मैं उसके घुटने पर सिर टिका कर लेट जाता। सोचने लगता, पता नहीं, वह बाबू और माँ के बारे में क्या सोच रही होगी! जब तुम किसी लड़की को बहुत चाहने लगते हो - तब भीतर की पट्टियाँ खुल जाती हैं - और तुम्हें डर लगा रहता है कि कहीं उसके मुँह से हँसी या हिकारत का शब्द न निकल पड़े। एक उम्र के बाद तुम उन्हें (माँ-बाप को) एक खुले जख्म की तरह भीतर ले कर

चलते हो। अगर वे जीवित हों, तो कोई बात नहीं। वे अपने को स्वयं बचा सकते हैं। पर अगर वे नहीं हैं, तब-तब कोई भी हथेली पर उनकी राख फूँक मार कर उड़ा सकता है।

'सुनो...' उसने धीरे से कहा - और तब उसका स्वर सुन कर मेरा दिल धड़कने लगा - मैं उसके स्वर को पहचानता था - जब उसे बहुत कड़वी, बहुत घातक बात कहनी होती थी - उसका स्वर अचानक बहुत कोमल हो जाता था।

'फैटी...' उसने कहा, 'मुझे नहीं मालूम था, तुम इतने बदल जाओगे।'

'कैसे?' मैंने कहा।

'फोटो में तुम बिल्कुल निर्दोष दिखाई देते हो।'

उसने यही शब्द कहा था, निर्दोष - जिसे सुन कर मुझे लगा, जैसे मैं गंदगी में डूबा हूँ - तीस साल से जमा होते पाप, झूठ और धोखा। मैं हँसने लगा, 'इरा, यह फोटो तीस साल पहले की है - मैं तब सात बरस का था।'

'मुझे मालूम है।' उसने कहा।

'तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम!' मेरी देह गुस्से और पसीने से थरथरा रही थी। उसने मेरा सिर अपने घुटनों से हटा दिया - अलग कर दिया, जैसे मुझे कोई छूत की बीमारी हो। इच्छा हुई, उठ कर कमरे की बत्ती जला दूँ, एक बार उसकी आँखों से दोबारा अपने को देखूँ - बैंक के जिस खाते में हमने अपना प्रेम जमा किया था, क्या उसमें से मैं एक पाई विश्वास नहीं भुना सकता? लेकिन मैं उठा नहीं। मैं अँधेरे में बैठा रहा। मुझे शक हुआ, वह मुझे देख रही है - ऐसा कई बार होता है, जब अँधेरे में तुम दूसरे को नहीं देख सकते - लेकिन यह पता चल जाता - कि वह तुम्हें देख रहा है, तौल रहा है, परख रहा है - और तुम कुछ भी नहीं कर सकते, कोई दलील, कोई पैरवी, कोई बचाव तुम्हें नहीं बचा सकता - वह शायद समझ गई। उसने अँधेरे में हाथ उठाया और मेरा चेहरा टटोलने लगी... मैंने उसे बीच में ही पकड़ लिया, 'सुनो,' उसने कहा, 'क्या तुम मुझे सचमुच चाहते हो... क्या मैं तुम पर भरोसा कर सकती हूँ?'

वह इतना हताश, इतना कातर, इतना संपूर्ण प्रश्न था कि मैंने जल्दी से उसका हाथ अपने चेहरे से हटा दिया... जैसे अचानक किसी ने मुझे रास्ते में पकड़ कर दिन-दहाड़े पूछा हो, 'फैटी, क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो?' एक पागल-सा विचार आता है - अगर इसका कोई जवाब नहीं है, तो तुम जी नहीं रहे हो - तुम बहुत साल पहले मर गए थे - जब तुम्हारा फोटो खिंचा गया था - तुम्हारा फुरना कहीं और है - तुम्हें यह भी नहीं

मालूम, तुमने उसे रास्ते में कहाँ गिरा दिया। मैंने अँधेरे में उसे पकड़ लिया - अपने पास घसीट लिया - और हम दोनों बहुत देर उन डरे हुए बच्चों की तरह बैठे रहे, जो रास्ता भूल कर फुटपाथ पर बैठ जाते हैं - प्रतीक्षा करते हैं कि शायद कोई हाथ पकड़ कर घर पहुँचा आए।

घर कहीं न था... दुख था। बाँझ दुख, जिसका कोई फल नहीं, जो एक-दूसरे में टकरा कर खत्म हो जाता है - और हम उसे नहीं देखते जब तक आधा रिश्ता पानी में नहीं डूब जाता। तब हम घबरा जाते हैं, आतंकित-से हो कर पानी को उलीचते हैं - पर फायदा कुछ भी नहीं है - जितना दुख हम बाहर निकालते हैं - उससे कहीं ज्यादा सुराख से भीतर चला आता है। फिर हम बार-बार वहीं लौट आते हैं, मेरा एक कमरा, पिता का बिस्तर, माँ की खाली कुर्सी - और जून का महीना। वह लायब्रेरी में बैठी रहती और फैटी स्टेटमेंट तैयार करता... न्याय और झूठ के बारे में - कोई भी चीज - जो किसी तरह सुराख को बंद कर सके, बहते पानी को रोक सके।

फिर जुलाई का महीना आया - और मुझे पता चला, सुख क्या होता है। कभी दिल्ली का आकाश देखा है - मेरा मतलब है - जुलाई में - टेलिफोन बूथ के शीशे के बाहर, जब बादलों के पीछे एक हल्का और पीला रोशनी का धब्बा दिखाई देता है - नहीं - दिखाई नहीं देता, सिर्फ आभास होता है - कोई चीज चमक रही है। वह सूरज है - सूरज का एक संक्षिप्त धुला हुआ प्रेत। हमारा सुख बिल्कुल वैसा था - एक डबडबाई रोशनी का भ्रम, माया और सच के बीच एक भागती हुई छाँह। वह मेरे घर के ऊपर ठहर जाती - और हम अपनी चटाई और चादर बाहर ले आते। थोड़ी-सी बारिश की बूँदें छत की धूल को समेट लेतीं और एक सोंधा, दुधैला-सा धुआँ हवा में उड़ने लगता। हम छत पर अकेले लेटे रहते। मुझे कोई खतरा नहीं था कि कोई हमारे सुख में दखल दे सकेगा - क्योंकि वे बरसों पहले मर गए थे और सब कमरे और अलमारियाँ और मकान की छत मेरे हवाले कर गए थे।

भूख की चिंता नहीं थी। वह अपना टिफिन-दान मेरे हीटर पर रख देती - अंडे की भुजिया, आलू, टोस्ट - और जब कभी उसकी माँ बहुत खुश होती - तो पीले, नमकीन चावल - जिनमें मटर पड़े रहते। मेरे पास सूखी चीजें रहती थीं - डबलरोटी, चीज और मछली के डिब्बे - कभी-कभी मैं उसे हैरान कर देता जब मैं उसे जबर्दस्ती बाहर छत पर बिठा देता - आँखों पर रूमाल बाँध देता, ताकि वह भीतर न देख सके... और चीज का आमलेट बना कर उसके सामने रख देता। वह खाने लगती... हैरान हो कर मेरी ओर देखती... और मैं उसकी पट्टी उतार देता... ताकि वह मुझे अच्छी तरह देख सके।

'किसने सिखलाया तुमको?' उसने पूछा - जैसे आमलेट बनाना दुनिया का आठवाँ विस्मय हो, 'किसी ने नहीं,' मैंने कहा, 'जब मैं बाहर था, तो सब कुछ खुद बनाता था।'

'तुम खुद बनाते थे?'

'हाँ... क्यों?' मुझे नहीं मालूम था, इतनी मामूली-सी बात उसे छू डालेगी।

'मैं कुछ भी नहीं बना सकती।' उसने कहा - और अपना सिर मेरे कंधे के नीचे टिका दिया। उसका सिर मेरे गले के नीचे था - और मैं उसकी सिर्फ प्रोफाइल देख सकता था - आधा माथा, पलकों के बाल और खुले हुए होंठ - जैसे बच्चे कुछ सोचते हुए मुँह खोल देते हैं, 'तुम सोचते हो, अगर मैं बाहर जाऊँ तो अपने पर रह सकती हूँ।'

'बाहर कहाँ?'

'कहीं भी - विदेश नहीं... लेकिन अपने घर के बाहर।'

'क्या करोगी?' मैंने धीरे से उसका सिर उठाया - उसकी आँखों को देखा जो मेरे चेहरे पर टिकी थीं, 'क्या अपना घर छोड़ दोगी?'

सहसा उसकी देह सिकुड़ गई। यह भयानक क्षण होता - जब वह अपने में सिकुड़ जाती - और मुझे कुछ भी पता नहीं चलता था कि वह क्या सोच रही है... जैसे उसकी देह मुझसे सटी हो - पर वह स्वयं मुझे छोड़ कर चली गई हो... उन जानवरों की तरह, जो खतरे की आहट पाते ही अपना रंग बदल लेते हैं। पेड़ या घास या पत्तों के बीच वे भी पेड़ और घास और पत्ते बन जाते हैं, होते हुए भी कहीं दिखाई नहीं देते, 'इरा,' मैं उसे हिलाने लगता, और वह लौट आती - हैरानी से चारों तरफ देखती, मानो तय नहीं कर पा रही हो कि वह कहाँ है, अपने घर में या मेरे कमरे की छत पर...।

वह कमरे के भीतर जाती - पर बत्ती नहीं जलाती। कमरे में एक महीन रेत-सा उजाला रेंगता रहता-जुलाई की रोशनी - जो तारों से टपकती हुई भीतर तक चली आती। मैं बाहर से उसे देखता - एक स्वप्निल-सी सिलहट - उसका सिर दिखाई देता, मुँह में दबे क्लिप, कुर्सी पर किताबों के बीच उसकी जींस, कुर्ता, कंधे का थैला, थैले में नीली फाइल, जिसके कागज ऊपर निकले रहते। अब लगता है, वह जो जुलाई की एक शाम देखा था, वह गलत है, धोखा... क्योंकि जब हम पीछे मुड़ कर देखते हैं तो सब शामें एक स्मृति पर टँग जाती हैं - और हमें भ्रम होता है कि वह जुलाई की एक शाम हुआ था - जबकि उसमें अगस्त और सितंबर और अक्तूबर की सब घड़ियाँ शामिल हैं - एक

प्राचीन फॉसिल की तरह, जो ऊपर से सिर्फ एक पत्थर-सा दिखाई देता है किंतु जिसमें बीती हुई सदियों की तमाम हड्डियाँ परत-दर-परत जमा होती जाती हैं।

वह बत्ती जला देती और दरवाजे के बाहर झाँकने लगती, 'फैटी!'

मैं चुप रहता और छत के अँधेरे कोने में खड़ा रहता।

'फैटी,' वह दोबारा बुलाती और कोई उत्तर न पा कर बाहर आ जाती, इधर-उधर देखती और फिर पानी की टंकी के सामने आ खड़ी होती। नल की टूटी खोल देती और अपने कुर्ते की बाँहों को मोड़ कर मुँह धोने लगती। मैं देखता, कैसे पानी उसके चेहरे पर बहता हुआ उसकी नाक की टिप पर एक बूँद की चमक में थिर हो जाता है, जैसे वह कोई अटका हुआ आँसू हो... मैं उसके पास आता और वह चौंक कर पीछे देखती, मेरे तपते होंठ उसके गीले चेहरे की ठंडक को सोखने लगते, दुख में कोई डर नहीं होता, किंतु जिसे हम सुख कहते हैं, वह हमेशा डरों से घिरा आता है। वह जाने की घड़ी होती - और हालाँकि हम दोनों एक शहर में रहते थे, जाने से पहले लगता, जैसे हमें कोई चीथड़ों में फाड़ रहा है, तार-तार कर रहा है। मैं ताला-चाभी ढूँढ़ने लगता और वह खाली टिफिन अपने झोले में डाल देती, जहाँ उसकी थीसिस के नोट्स उघड़े रहते। 'फैटी,' उसने कहा, 'तुम बैठे रहो - मैं चली जाऊँगी। अभी कुछ भी देर नहीं हुई।' 'देर? तुम जानती हो, क्या बजा है?' मैं एक हाथ में उसका थैला उठाता और दूसरे हाथ से टॉर्च जला कर जीना उतरने लगता - दीवार पर उसकी दुबली, क्षीण-सी छाया मेरा पीछा करती - बीच की मंजिल पर ठिठक जाती - सारा घर खाली। वह एक-एक कमरे को जानती थी। मैंने उसे एक गाइड की तरह सब कुछ दिखाया था - वह कमरा, जहाँ बड़ी बहन शादी से पहले रहती थीं; दाईं तरफ वह कमरा, जहाँ बाबू मरे थे; पीछेवाली खिड़की, जहाँ से आकाश-गंगा दिखाई देती थी... और वह कुर्सी, खाली और फटीचर - एक आर्मचेयर!

वह सीढ़ियों पर खड़ी थी - सफेद और स्तब्ध - बरामदे की रोशनी उसके बालों पर गिर रही थी। वह हमेशा बाहर जाते हुए उस कुर्सी को देखा करती थी, जो बीच छज्जे पर पड़ी रहती थी... तुम्हें याद है? वह धीमे स्वर में पूछती, 'हाँ,' मैं कहता, 'मैं यहीं खड़ा था, वे इसी कुर्सी पर बैठी थीं।'

'उनके अंतिम शब्द क्या थे?'

'कौन-से अंतिम शब्द?' मैंने उसकी ओर देखा।

'जब तुम जा रहे थे।' उसने कहा।

'मैंने तुम्हें कितनी बार बताया है।' मैंने कहा।

'मैं दोबारा सुनना चाहती हूँ - तुम बाहर जा रहे थे। वह बरामदे में बैठी तुम्हें ताक रही थी...' उसने कहा - जैसे वह कोई स्वप्न देख रही हो।

'टिकट के बारे में...' मैंने कहा। 'उन्होंने पूछा, मैंने अपना टिकट जेब में रखा है या वैलेट में... उन्हें हमेशा यह डर लगा रहता था कि मैं अपना टिकट खो दूँगा।'

एक क्षण वह खाली कुर्सी को देखती रही।

'और तुमने उन्हें खो दिया।'

'वे बहुत बूढ़ी थीं...' मैंने कहा, 'उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता था।'

'फैटी,' उसका स्वर थरथरा-सा गया। 'वे अकेले घर में मरी थीं।'

मैंने उसकी ओर देखा - आँखें एक विस्मयकारी आतंक में खुली थीं... कहीं एक आईना है, लंबे पेड़ों से घिरी विक्टोरिया स्ट्रीट और बीच में एक छोटा-सा पार्क, खेलते हुए बच्चे और ऊपर घूमते हुए बादल, लंदन का पीला आलोक... बेंच पर मैं बैठा हूँ, हाथ में एक केबल लिए, एक लाल कागज का टुकड़ा, जिस पर पाँच काले शब्द बाहर झाँक रहे हैं - मदर डाइड विदाउट एनी पेन, और मैं शब्दों को बार-बार दोहरा रहा हूँ, विदाउट पेन, विदाउट एनी पेन, उस तिब्बती भिक्षुक की तरह, जो प्रार्थना का पहिया घुमाता हुआ एक ऐसे दाने पर पहुँच जाता है - जहाँ कोई सत्य है, कोई ईश्वर, कोई शून्यतम सूनापन - एक विस्मयलोक, वंडरलैंड, जिसके भीतर एलिस ने झाँका होगा, देखा होगा, कोई दरवाजा दूसरी दुनिया को जाता है।

'अकेले में? हाँ, अकेले में,' मैंने कहा, 'लेकिन बिना किसी कष्ट के, विदाउट एनी पेन - उन्हें आखिरी वक्त कोई दुख नहीं था, इरा, उनके आखिरी दिन अकेले में बीते, पर सुख में बीते,' और तब मुझे लगा, वह रो रही है, थरथर काँप रही है - मैं उसे छूने के लिए आगे बढ़ता और वह मुझे ठेल देती, दीवार से सट कर त्रस्त निगाहों से मुझे देखने लगती - अजीब नफरत में - नफरत भी साधारण नहीं, बल्कि ऐसी, जिसमें एक ठंडा, पथरीला, तिरस्कार छिपा रहता, 'तुम यहाँ क्या कर रहे हो फैटी?' - वह धीरे से कहती। 'तुम यह घर बेच क्यों नहीं देते...' वह कहती, 'यह तुम्हारे पिता का घर है - और तुम इससे जोंक की तरह चिपके हो।' वह धीरे-धीरे उस फोड़े के आसपास नाखून घुमाने लगती, जिसमें टीस का घर था, एक पीली फूली हुई गुठली, जिसे वह निचोड़ने लगती। 'जाते क्यों नहीं - इसलिए कि तुम यहाँ सुरक्षित हो?' आँसुओं के बीच हँसने लगती -

पुचकारने लगती - ओ फैटी, डियर फैटी - डियर-डियर फैटी - अब वह सीधा उसकी सुई तले होता, एक अधमरा जीव - जिसका धड़ कुचल जाता है, किंतु पूँछ दीवार पर अपने को पटकती रहती है। उसकी पीड़ा दुबक कर किसी कोने में भाग जाती - अलमारी में रखे बाबू के दाँत, माँ की नथ - वह उनके पीछे छिप जाता, पोएट्री की किताबें, स्टेटमेंट, रिकॉर्ड - अपने को बचाने के लिए उसने कितनी चीजें जमा कर रखी थीं - किंतु वह उसे लकड़ी से बाहर निकालती - जैसे हम छिपकली, किसी छछूँदर को अँधेरे, सुरक्षित कोने से बाहर निकालते हैं - दुनिया के क्रूर उजाले में - दीवार के एक कोने से दूसरे कोने में भागते हुए, तिलमिलाते हुए, हाँफते हुए...

वह बाहर आ गई - बाहर - जहाँ जुलाई का अँधेरा दिल्ली की छतों पर अटका था। वह स्कूटर लेती और उसके घर से दूर भागने लगती - कनॉट प्लेस, इंडिया गेट, पुराना किला - सब एक-एक करके गुजर जाते। ऊपर सिर्फ बादल होते और छितरे हुए तारे - जो जुलाई की रातों में धुले हुए बटनों-से चमकते थे। न कोई पुल, न रेलगाड़ी - जिसके नीचे मैं कोई इच्छा माँग सकती।

उसने चाभी बाहर निकाली, गेट का ताला खोला और भीतर चली आई। छोटा-सा लॉन, नीबू के पेड़ और ईंटों की दीवार - यह उसका घर था। वह कुछ देर अँधेरे में खड़ी रही - खिड़कियाँ खुली थीं - पापा टेलीविजन देख रहे होंगे - माँ कपड़ों पर इस्तरी कर रही होंगी। वे जान लेते थे, वह आ गई है - पर उसके कमरे में आने का साहस नहीं बटोर पाते थे - वह रसोई में जा कर टिफिनदान रखती, मुँह धोती - और भाग कर अपने कमरे में आ जाती। जल्दी से कोई रेकार्ड लगाती और बिना कपड़े बदले बिस्तर पर पसर जाती - बीच में समय बीतने लगता - अगस्त के खुले दिन और सितंबर का उदास आलोक - झाड़ियाँ और घास और पेड़ अपना रंग बदलने लगते - वह अपनी थकी आँखों को तकिए पर भींच लेती...

वह हॉल कमरे में आती - बिल्कुल दबे कदमों से - ऊपर पापा और माँ सो रहे होते - वह बत्ती भी नहीं जलाती, उसे फोन के सब नंबर मालूम थे और अँधेरे में वह डायल घुमाती - और दूसरी तरफ घंटी सुनाई देती, वह सो रहा होगा, खाली घर के सन्नाटे में फोन की आवाज चीख रही होगी, 'हलो, हलो...' फैटी का स्वर उसे चौंका देता - वह सुन्न-सी खड़ी रहती, 'हलो, हलो, हलो...' और तब सन्नाटा हो जाता, वह रिसीवर रख देता - और वह फोन पर धीरे से कहती, 'फैटी, यह मैं हूँ, मैं सिर्फ तुम्हारी आवाज सुनना चाहती थी...'

वह नवंबर का महीना था - और उसकी आवाज को दिल्ली की हवा पकड़ लेती और सड़क पर उड़ने लगती। चलते हुए लोग क्षण-भर के लिए ठिठक जाते - कौन है यह फैटी - वे सोचने लगते - किंतु शहर की हवा में इतने नाम, इतनी साँसें, इतने आँसू तिरते रहते - कि यह अनुमान लगाना असंभव हो जाता कि किसका नाम किसने पुकारा है - और वे सिर हिला कर आगे बढ़ जाते, भूल जाते, भीड़ में खो जाते।

लेकिन वह कभी नहीं भूल पाती - 'यह मेरा भेद है' - वह सोचती - 'मेरा सबसे बड़ा भेद, रहस्य - फैटी - मुझे देखो और तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम सबसे पाखंडी, झूठी-हिप्पोक्रेट - दुनिया की सबसे बड़ी हिप्पोक्रेट लड़की को देख रहे हो - तुम हँस रहे हो? लेकिन ठहरो - मैं तुम्हें कुछ दिखाना चाहती हूँ। यह मेरी पोटली है - हँसो नहीं - खोलो, खोल कर देखो - नहीं, ये थीसिस के नोट्स नहीं - इन्हें अलग रहने दो - ये पोएट्री की पतली, पैंगुइन किताबें नहीं - पैसोओ, अन्ना अख्मातोवा, नेरूदा। नहीं, ये नहीं, ये कागज, ये नोट्स, ये सॉनेट्स नहीं... फिर, फिर क्या?

'सुनो - तुम्हारे घर से जब मैं अपने घर लौटती हूँ, तो बहुत देर तक मैं नीचे लॉन में खड़ी रहती हूँ - अँधेरे में ऊपर देखती हूँ - पीली ईंटों की दीवार, हरी खिड़कियाँ, खिड़कियों पर झूलती लताएँ - पूरा एक बँगला, एक मकान-जानते हो, वे इसे मेरे लिए छोड़ जाएँगे - मैं खुली आँखों से इन खिड़कियों, हवा में फरफराते परदों को देखती हूँ - वे अब डाइनिंग रूम में बैठे होंगे। वे तब तक खाली प्लेटों के आगे बैठे रहते हैं, जब तक मैं नहीं आ जाती, अपनी इकलौती बेटी की प्रतीक्षा में, आधे जागते हुए, आधो सोते हुए - फैटी, जैसे तुम अपने माँ-बाप के बारे में सोचते हो, वे मेरे बारे में सोचते हैं - एक दिन जब वे नहीं रहेंगे, मैं उनकी वसीयत से बाहर आऊँगी - एक साँप की तरह - जो समूची जायदाद, घर-कोठी, गहने-जेवर पर फन फैलाता है और उन्हें अपने भीतर डस लेता है - एक कीड़ा... जो जिंदगी-भर उनके खून से चिपका रहता है - और उनके मरने पर कोनों में जा कर उनकी हड्डियों को कुतरता है, जब तक वे बिल्कुल साफ नहीं हो जातीं - जिन पर खून और मांस का निशान भी नहीं दिखाई देता - इन पर बैठ कर एक दिन मैं उन लोगों में मिल जाऊँगी, जो हर जगह हैं - तुमने उन्हें देखा नहीं - नैनीताल और मसूरी की सड़कों पर घोड़ों पर दौड़ते हुए...? दोपहर के समय अपनी ऊबी आँखों से समय कुतरते हुए - वे अलग-अलग वेशों में आते हैं - दिल्ली की सड़कों पर - गरीबों की चर्चा करते हुए - वे वल्गर नहीं हैं - वे बोल रहे हैं, लिख रहे हैं, पेंट कर रहे हैं।

मैं उनमें हूँ, मैं अलग नहीं हूँ, वे कितनी साफ, कितनी निर्दोष! कितनी चमकदार हड्डियों पर बैठे हैं - फैटी, मैं उनमें हूँ, उनसे अलग नहीं हूँ, मैं सब देखती हूँ, बाग के उजले नीले अँधेरे में, और मैं भागने लगती हूँ, फैटी, मैं चीखती हूँ, मैं भागते हुए गेट के

पास आती हूँ - पर गेट का ताला बंद है - और तुम बाहर सड़क पर हो - अपने घर लौट रहे हो - मैं अँधेरे में तुम्हें देखती हूँ और तब मुझे वह दोपहर याद आती है, जब तुम लायब्रेरी में आए थे - तुम एक स्टेटमेंट लाए थे - मैं तुम्हें अक्सर दिल्ली की सड़कों पर देखा करती थी, पेड़ों के नीचे, घास के स्क्वैयर में - उस कंसर्ट में - जिसमें यहूदी मेनुहिन पहली बार हिंदुस्तान आए थे... मैं तुम्हें देखा करती थी और सोचती थी, नहीं, सोचती कुछ नहीं थी - हैरान-सी होती थी - कैसे कुछ लोग दूसरों की मुक्ति के लिए घूमते हैं - वे असाधारण लोग होते होंगे, परमहंस, मदर टेरेसा, मार्टिन लूथर किंग... वे अपना हाथ कंधे पर रखते होंगे - और सब कुछ बदल जाता होगा - मैंने तुम्हें जब उस दिन लायब्रेरी में देखा - मैंने सोचा - मैं तुम्हारे कागज पर नाम लिखूँगी - और हमेशा के लिए छुटकारा पा जाऊँगी... फिर मैंने तुम्हें देखा - और सहसा खयाल आया। मैं तुमसे ज्यादा भाग्यवान हूँ... मैं अपना घर कभी भी छोड़ सकती हूँ, दिल्ली के बाहर जा सकती हूँ। दूसरी तरफ से देखो - तो तुम मुझसे कहीं ज्यादा भाग्यवान हो - तुम्हारे अपने विजन हैं, जरा-सा स्विच दबाओ - और वे चमकने लगते हैं, रोशनी के दायरे, जिन्हें तुम किसी भी समय बाहर निकाल सकते हो, करीने से सजाते हो - पूरा एक म्यूजियम - जो कर्जन रोड से लंदन की विक्टोरिया स्ट्रीट तक फैला है - नहीं, तुम सचमुच मुझसे कहीं-कहीं ज्यादा भाग्यवान हो, तुम एक दिन अपने घर के कोने में 'उन दिनों' की पोटली भी रख लोगे, जो मैंने तुम्हारे साथ बिताए थे।

वह यह पोटली अपने साथ लाई है - जाने से पहले - वह उसे सुपुर्द कर देना चाहती है। इसमें मार्च के पत्ते जमा हैं और जुलाई की रातें, गुलमोहर के फूल जो मई के शुरू में कनॉट प्लेस में दहकते थे और किताबों की दुकानें और टेलीफोन बूथ... मिंटो रोड का ब्रिज - जिसके नीचे उन्होंने एक दोपहर एक-दूसरे से मुक्ति पाने की प्रार्थना की थी।

क्या कोई ऐसी पीड़ा है, जो इस शहर के कोने से उखड़ कर बाहर नहीं आती?

वह लायब्रेरी से बाहर आई - और दरवाजे पर फैटी दिखाई दिया। वह जल्दी से उसके पास आया - और उसका मन बैठने लगा, 'तुम कब आए?' उसने बहुत क्षीण स्वर में पूछा, 'मैं कब से खड़ा हूँ...' उसने कहा - 'तुम लिख रही थीं - मैं बाहर से तुम्हें देख रहा था।' 'मैं तुम्हें लिख रही थी...' उसने कहा और वह धीरे से हँसने लगा, 'मुझे लिख रही थीं? दिखाओ।' 'अभी नहीं।' उसने अपना सिर उसकी छाती में दुबका लिया - उससे उसको बहुत शांति मिलती थी - जैसे दिन-भर की थकी-माँदी चिड़िया अपने घोंसले में दुबक जाती है, 'क्या लिख रही थीं?' उसने उसके बालों पर अपना मुँह रख दिया, 'एक भेद...' उसने कहा, 'एक रहस्य' - उसने कहा, 'एक मिस्ट्री,' 'तुमने मुझे इसीलिए बुलाया था?' उसने उसका चेहरा उठाया - और तब वह हतप्रभ-सा हो गया - उसकी

आँखें चमक रही थीं, जैसे वह रो कर उठी हो, बुखार में हो, नींद में चल रही हो। 'इरा!!' उसने कहा, 'हिश!' - उसने उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया, 'चलो,' उसने कहा, 'वे हमें देख रहे हैं।'

वे बाहर चले आए। कर्जन रोड की बत्तियाँ जनवरी की धुंध में जुगनुओं-सी टिमटिमा रही थीं। फैटी ने उसका थैला अपने कंधे पर लटका लिया। वह ध्यान से उसे देखने लगी, जैसे पहली बार उसे देखा था - छोटे पैरों में पेशावरी चप्पल, काली कार्डरॉय की पैंट, लंबा ढीला ब्राउन स्वेटर, जो हमेशा नीचे से फट जाता था और वह उसे काले धागे से सी देती थी...

'स्कूटर लोगी?' उसने पूछा।

'नहीं, पैदल चलेंगे... मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ...'

'इरा, क्या बात है?' वह बीच सड़क पर ठिठक गया - वह चलती गई - सिर पर बँधा एक स्कार्फ - सलेटी रंग का कुरता, माथे पर काली बिंदी - वह अपने भीतर की धड़कनों को समेट लेती है, जैसे कोई तैराक कूदने से पहले अपनी समूची देह को बटोर लेता है। यह क्षण है, उसने सोचा - यह मौका है, मैं अभी नहीं कूदी, तो जिंदगी-भर किनारे पर खड़ी रहूँगी, 'फैटी,' उसने एक कदम आगे बढ़ाया, फिर दूसरा, फिर उसका स्वेटर पकड़ लिया - वह आगे बढ़ी और आँखें मूँद लीं, अब वह हवा में थी। अब वह कूद रही थी, 'मैं दिल्ली छोड़ रही हूँ,' उसने कहा।

वह शांत थी। सब कुछ शांत था। वह जनवरी की शाम थी और वे चुपचाप चलते हुए इंडिया गेट के सामने खड़े हो गए थे, 'कब?' उसने पूछा, 'कहाँ जाओगी?' वह खड़ी हो गई... धुंध के बीच एक लौ जल रही थी - किसी अज्ञात सैनिक की याद में, जो पहली लड़ाई में मरा था। 'मैंने अभी कुछ नहीं सोचा,' उसने कहा, 'हिंदुस्तान बहुत बड़ा है...' और वह धीरे से हँसने लगी - उसका हाथ पकड़ लिया, 'फैटी,' उसने कहा, 'मैं कहीं भी जा सकती हूँ।'

'घर छोड़ दोगी?'

एक क्षण वह सूनी सड़क पर ठिठक गई - याद आया - इस घड़ी माँ अपने कमरे में इस्तरी कर रही होंगी, खाने की मेज पर तीन प्लेटें होंगी - पापा टेलीविजन देख रहे होंगे - मैं इन्हें छोड़ रही हूँ - घर नहीं, उनका पैसा नहीं, मैं कहीं भी हूँ, भूखी नहीं मरूँगी... मैं सेफ हूँ, सेफ, सेफ्टी फर्स्ट... एक घोर असीम हताशा में उसने इंडिया गेट

को देखा - हल्की चाँदनी में वह रेत का एक ढूह जान पड़ता था - चारों तरफ लंबी घास, हवा में हिलते पेड़...'फैटी,' उसने कहा, 'मेरी एक बात मानोगे?'

'क्या इरा?' उसने बहुत धीमे स्वर में कहा। वह रुक गई।

'तुम कभी अपना घर नहीं छोड़ोगे?'

'लेकिन उस दिन...' उसने विस्मय से उसकी ओर देखा, 'तुम मुझे बाहर आने को कह रही थीं।'

'बाहर?'

'बाहर - दुनिया में।'

'मुझे मालूम है,' उसने सिर हिलाया, फैटी के माथे पर बिखरे बालों को ऊपर उठा दिया, 'तब मैं नहीं जानती थी कि वे तुममें रहते हैं... वे घर में हैं।'

'वे कौन?' फैटी ने हिचकते हुए कहा, 'इरा, वे कब के मर गए।'

'मर गए!' वह धीरे से हँसने लगी ...बरामदे में रखी कुर्सी, बिस्तर के पीछे आकाश, मिल्की वे... वे वहाँ हैं, वे हमेशा वहाँ रहेंगे... फैटी, मुझे देखो', और उसने अपना चेहरा ऊपर उठाया - एक साँस ऊपर आई - उसने झटके से उसे अपने पास खींच लिया - पीली चाँदनी में उसकी आँखें ऊपर उठीं और उसने कहा, 'क्या मैं जीवित हूँ?'

धुंध ऊपर उठी और पेड़ सरसराने लगे। रात की हवा में सब कुछ असंभव जान पड़ा, जीना, मरना, घर छोड़ना... 'फैटी' उसने कहा, 'तुम्हारे फादर का एक रजिस्टर था। वह कुछ लिखना चाहते थे... तुम्हें याद है?'

फैटी ने ऊपर देखा - धुंध के परे तारे छिटक आए थे... एक महीन-सा आलोक पेड़ों की फुनगियों पर बिखरा था, 'लाइफ हियर-ऐंड हियर आफ्टर! लेकिन क्या दोनों एक साथ एक ही दुनिया में नहीं हैं, जिंदगी यहाँ और वहाँ, वे हमारे साथ जी रहे हैं, हम उनके मरने में शामिल हैं?'

वे उसके घर के सामने खड़े थे। फाटक खुला था - दोनों तरफ यूक्लिप्टस के पेड़ - बीच में बजरी की सड़क - एक नीबू की झाड़ी। 'फैटी, तुम्हें याद है?' 'क्या बिट्टी?' कभी-कभी वह उसे बहुत प्यार में बिट्टी कहा करता था - एक निस्सहाय-सी बच्ची,

जो उसका हाथ पकड़ कर दिल्ली की सड़कें लाँघा करती थी। 'क्या याद है?' उसने पूछा - और तब देखा, इरा फाटक का पल्ला पकड़ कर कहीं भीतर अँधेरे में झाँक रही है...

'एक बार और कहो...' उसने कहा।

'क्या?'

'जो अभी कहा था।'

'बिट्टी!'

उसने उसकी ओर देखा - आँखें उसके चेहरे को ढूँढ़ने लगीं, 'हम पिछली जनवरी में मिले थे - मैंने तुम्हें फोन किया था। तुम गिनती गिन रहे थे। पूरे बारह महीने...'

लॉन की भीगी, धूमिल रोशनी में वह उसका चेहरा देखता रहा।

'तुम आज क्या लिख रही थीं?' उसने पूछा।

'लायब्रेरी में?' उसने फैटी के दोनों हाथों को अपने गालों में थमा लिया - जैसे माचिस की लौ को बचाने के लिए हम उसे हाथ से ढक लेते हैं - और वह हवा में काँपती रहती है - बुझने और जलने के बीच हिचकिचाती हुई, 'एक स्टेटमेंट,' उसने कहा, 'एक प्रार्थनापत्र, फैटी, मैं अपने को लिख रही थी, फिर मुझे अचानक पता चला कि जब कोई पाप का कन्फैशन करता है, तो अपने लिए नहीं, ईश्वर के लिए भी होता है... और मुझे लगा, तुम भी उसमें हो, जैसे एक बरस पहले जिस स्टेटमेंट पर मैंने अपना नाम लिखा था - जानते हो, मेरे नाम के ऊपर किसका नाम था?'

'किसका बिट्टी?'

'यातना का...' उसने धीरे से कहा, 'जब तुम बाहर जाने लगे, तो मैंने सोचा, मैं तुमसे, फिर मिलूँगी...'

अँधेरे में चाभियों की खनखनाहट हुई - और वे दोनों अलग हो गए। लालटेन की रोशनी में चौकीदार का चेहरा दिखाई दिया। 'बीबी जी, गेट बंद करना होगा।' उसने कहा और स्नेहपूर्ण नजर से फैटी को देखा - वह इन दोनों को अर्से से देखता आया है।

फैटी ने उसका थैला कंधों से उतारा - थैला - जिसमें हमेशा थीसिस की फाइलें, किताबें - और सबसे नीचे - कटोरदान दबा रहता था।

'तुम आओगे?' उसने चौकीदार से अपनी आवाज छिपाते हुए कहा, 'मैं तुम्हें देखूँगी।'

गेट बंद हुआ तो भी वह खड़ा रहा - बजरी की सड़क पर उसकी चप्पलों की चरमराहट सुनता रहा। फिर वह भागने लगा - बँगले के अहाते के बाहर एक छोटी लेन थी - वहाँ से उसका कमरा दिखाई देता था, टैरेस पर एक रोशनी का द्वीप - घर लौटने से पहले वह हमेशा उसे देखा करता था।

बहुत बरसों बाद वह मकान खाली हो गया। अब वहाँ कोई और लोग रहते हैं - किंतु फैटी जब भी वहाँ से निकलता, एक क्षण के लिए अँधेरी लेन पर खड़ा हो जाता... जैसे मुद्दत पहले खड़ा हो जाता था। वही हवा में झूमते यूक्लिप्टस के पेड़, नीबू की झाड़ी, लॉन के ऊपर उसका कमरा... वह प्रतीक्षा करता, अब वह आई होगी, कमरे की बत्ती जलाई होगी, कोई रेकॉर्ड लगा कर बिस्तर पर लेट गई होगी - एक अलौकिक-सी आवाज ईंटों की दीवार से, काँच के टुकड़ों पर फिसलती, छिलती हुई उसके पास आती थी, उससे लिपट जाती थी, धीरे से फुसफुसाती थी, 'फैटी, मैं यहाँ हूँ - यहाँ - मैं यहाँ हूँ।'